P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-10* June- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

शोध की सामान्य प्रविधियाँ एवं नियम

पिताम्बर दास
असिस्टेंट प्रोफेसर,
दर्शनशास्त्र विभाग,
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ,
वाराणसी

सारांश

शोध की सामान्य प्रविधियाँ एवं नियम प्रत्येक शोधार्थी को जानना अति आवश्यक एवं अनिवार्य है, यदि वह एक अच्छा शोध कार्य करना चाहता है तो दर्शनशास्त्र एक ऐसा विषय है जिसके अध्ययन के बिना किसी भी विषय का शोधार्थी शोध की प्रविधियाँ नहीं जान सकता, इसके अलावा मैनें इस शोध पत्र के माध्यम से शोध की सामान्य प्रविधियाँ एवं नियमों को शोधार्थी के सामने प्रस्तुत करने का प्रयास किया है, जिनके अध्ययन से वह एक उत्तम कोटि का शोध प्रबन्ध लिखकर प्रस्तुत कर सकता है। शोध प्रबन्ध लिखने के अनेक महत्त्वपूर्ण नियम एवं निर्देश होते है जिनको जानना शोधार्थी के लिए अति आवश्यक है। प्रस्तुत शोध पत्र मे ऐसे ही नियमों एवं सुझाओं की विस्तार से चर्चा की गई है। यदि शोधार्थी इन महत्त्वपूर्ण नियमों एवं निर्देशों का पालन करते हुए, अपना शोध प्रबन्ध पूर्ण करे तो उसका शोध प्रबन्ध उत्तम स्तर का ही होगा। प्रायः शोधार्थी शोध की सामान्य जानकारी एवं नियमों से अनभिज्ञ रहता है। अतः मैंने शोध से सम्बन्धित उन सभी बातों को दर्शानें का प्रयास किया है।

मुख्य शब्द : शोध, सामान्य, नियम, शोध प्रबन्ध, स्रोत, प्रविधियाँ, ज्ञान, परिकल्पना, वैज्ञानिक, समीक्षा, भूमिका, उपसंहार, अध्याय।

प्रस्तावना

एक अच्छे शोधार्थी को गुणात्मक, उत्तम एवं उच्च कोटि का शोध–प्रबन्ध लिखने के लिए, शोध की सामान्य पद्धतियों एवं शोध के सामान्य नियमें का ज्ञान भी अतिआवश्यक है। वैसे प्रत्येक विषय में अपने विषय के अनुसार शोध की अलग–अलग पद्धतियों की खोज की गयी है, परन्तु शोध की कुछ ऐसी सामान्य जानकारीयां है, जिनका ज्ञान होना प्रत्येक शोधार्थी के लिए अति–आवश्यक है। सामान्य दृष्टि से कहा जाता है कि शोध, अनुसंधान, खोज, अन्वेषण और गवेषणा आदि सभी शब्दों का प्रयोग प्रायः एक ही अर्थ में हुआ है अर्थात् ये सभी शोध से सम्बन्धित शब्द पर्यायवाची है। इस शब्द को अंग्रेजी में Research कहा जाता है। इस अनुसंधान की पद्धति में सर्वथा नूतन सृष्टि का नहीं, अपितु अज्ञात को ज्ञात करने का भाव है। मनुष्य विवेकशील प्राणी होने के कारण अपनी सचेतावस्था से ही जिज्ञासु रहा है। वह आत्मा, परमात्मा एवं जगत् को जानने के लिए अपनी प्राचीन अवस्था से ही उत्सुक रहा है अर्थात् आत्मा क्या है ? परमात्मा क्या है ? यह जगत् क्या है ? वह इस जगत् में क्यों है ? मुझे एवं जगत् को यहाँ लाने वाला कौन है ? मेरा एवं जगत् का परस्पर सम्बन्ध क्या है ? आदि–आदि प्रश्न मनुष्य को आदि काल से ही झकझोरते रहे है। मनुष्य की ज्ञान की भूख कभी शान्त नहीं हुई। मनुष्य की इस अशान्त पिपासा ने अनेक भौतिक एवं आध्यात्मिक रहस्यों का उद्घाटन किया और मानव की ज्ञान–संपदा में लगातार अभिवृद्धि की है। जिनमें बहुत सा ज्ञान सहज इंद्रियगम्य है और जिसमें कुछ ज्ञान ऐसा भी है, जो सहज इंद्रियगम्य नहीं है, परन्तु ऐसे ज्ञान के अस्तित्व को एकदम से नकारा नहीं जा सकता।

साहित्यावलोकन

प्रस्तुत शोध पत्र से सम्बन्धित मैनें सर्वप्रथम डॉ0 पिताम्बर दास अर्थात् मेरे द्वारा लिखित पाठ्य पुस्तक ''दर्शनशास्त्र की शोध प्रविधियाँ'' के पृ0सं0 109 से 120 पर से अधिकांश सामग्री ली है। यह पुस्तक शेखर प्रकाशन, इलाहाबाद द्वारा वर्ष 2017 मे प्रकाशित हुई। विशेष रूप से यह पुस्तक पी–एच0 डी0 कोर्स वर्क हेतु लिखी गयी है। कुछ सामग्री मैनें डॉ0 पिताम्बर दास द्वारा सम्पादित पुस्तक ''दार्शनिक शोध एक अन्तर्क्रियात्मक अनुशीलन'' के पृ0 सं0 7 से 12 पर से ली है। यह पुस्तक भारती प्रकाशन, वाराणसी द्वारा वर्ष 2017 में प्रकाशित हुई है। कुछ सामग्री डॉ0 विनयमाहन शर्मा की पुस्तक ''शोध प्रविधि'' के पृ0 सं0 10 से 25 पर से ली है। यह पुस्तक मयूर पेपरबैक्स, नोयडा द्वारा वर्ष 2013 मे प्रकाशित हुई है। इस शोध पत्र से सम्बन्धित कुछ सामग्री मैनें पारसनाथ राय एवं

सी.पी.राय द्वारा लिखित पुस्तक ''अनुसंधान परिचय'' के पृ0 सं0 17 से 62 पर से ली है। यह पुस्तक लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा द्वारा वर्ष 2015 में प्रकाशित हुई है।

ज्ञान प्राप्त करने की पद्धति

मनुष्य ज्ञान प्राप्त करने के लिए जिस पद्धति या प्रविधि का प्रयोग करता है, उसे वैज्ञानिक पद्धति कहा जाता है। विज्ञान अथवा निरीक्षण पद्धति में निहित है, न की विषय वस्तु में। विषय–वस्तु अथवा अनुसंधेय वस्तु भिन्न–भिन्न हो सकती है, परन्तु उनका ज्ञान प्राप्त करने की प्रविधि का एक ही मार्ग है और वह मार्ग है विज्ञान का। इस वैज्ञानिक अध्ययन के विचारकों ने चार स्तर बतायें है :–

1. प्रथम स्तर है–उद्देश्यहीन निरीक्षण अर्थात् मनुष्य अपने दैनिक जीवन में अनेक घटनाओं, दृश्यों का निरूद्देश्य निरीक्षण करता रहता है। जगत् का निरीक्षण करते–करते अचानक उसके मन में कोई सत्य कौंध जाता है। जैसे न्यूटन को पृथ्वी की गुरूत्वाकर्षण शक्ति का ज्ञान निरूद्देश्य निरीक्षण से ही हुआ था। उसने देखा कि वृक्ष से सेब नींचे की ओर गिरता है और इसी तरह से ऊपर फेंकने पर वस्तुएं नीचें की ओर ही गिरती है। इस प्रकार अचानक उसके मन में यह तथ्य जाग्रित हुआ कि पृथ्वी में कोई ऐसी शक्ति है, जो ऊपर के पदार्थों को नीचे की ओर आकर्षित करती है। इसी को न्यूटन ने पृथ्वी की गुरूत्वाकर्षण शक्ति का नाम दिया।
2. दूसरा स्तर व्यवस्थित अनुसंधान का है अर्थात् मनुष्य की बुद्धि जैसे–जैसे परिपक्व होती जाती है, मनुष्य तार्किक बनता चला जाता है और ज्ञान प्राप्त करने के लिए वह व्यवस्थित रूप से प्रयत्न करना प्रारम्भ करना शुरू कर देता है। इस उद्देश्यपूर्ण क्रमबद्ध अध्ययन से जो निष्कर्ष निकाला जाता है, वहीं फिर एक वैज्ञानिक नियम बन जाता है।
3. तीसरे स्तर में अध्येता विषय को निश्चित कर लेता है और उस पर अध्ययन करने के लिए किसी विशिष्ट परिकल्पना का निर्वाचन नहीं करता। परिणामस्वरूप अध्ययन की कोई दिशा निर्धारित नहीं हो पाती। ऐसी स्थिति में मनुष्य को कामचलाऊ परिकल्पना से काम चलाना पड़ता है और जैसे–जैसे वह निरीक्षण के द्वारा तथ्य एकत्र करता जाता है तो फिर वह कामचलाऊ परिकल्पना को या तो त्याग देता है अथवा उसमें सुधार कर लेता है। अतः अध्ययन का यह तीसरा स्तर और अधिक विश्वसनीय होता हैं।
4. चौथे स्तर में मनुष्य अथवा अध्येता का अध्ययन कामचलाऊ परिकल्पना अथवा नई परिकल्पना के साथ प्रारम्भ नहीं होता, अपितु इसमें पूर्वनिर्धारित नियम अथवा सिद्धान्त की परीक्षा मात्र की जाती है और परीक्षा के लिए नये–नये प्रयोग किये जाते है।

वर्तमान युग वैज्ञानिक युग है और यही कारण है कि वर्तमान युग में प्रत्येक समस्यामूलक तथ्य की परीक्षा वैज्ञानिक तरीके से की जाती है। वैज्ञानिक पद्धति, वैज्ञानिक निरीक्षण, विभाजन और तथ्यों की व्याख्या है। वैसे तो हम दृष्टि में आनेवाली प्रत्येक वस्तु को सहज भाव से देखते ही रहते हैं, परन्तु जब किसी वस्तु एवं विचार को हम विशेष प्रयोजन से देखते हैं, तब वह देखना वैज्ञानिक निरीक्षण कहलाता है। जैसे जब आप सामाजिक अथवा धार्मिक घटना को किसी अखबार अथवा समाचार चैनल में देखते है और उसे देखकर उसमें निहित कारणों का विश्लेषण करते है, तो आप वैज्ञानिक अध्ययन की ओर प्रवृत्त होते है, फिर आप उस घटना के सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभाव की परीक्षा करते है और उद्देश्य को ध्यान में रखकर आप एक निष्कर्ष निकालते है, तो ऐसा अध्ययन ही वैज्ञानिक प्रणाली कहलाता है। इस प्रकार वैज्ञानिक प्रणाली में दो बातें निकलकर सामने आती है कि 1. तथ्यों का सतर्कतापूर्वक सम्यक् विभाजन और क्रमानुसार उनके परस्पर सम्बन्ध का समायोजन। 2. सृजनात्मक कल्पना के आधार पर वैज्ञानिक नियम का निर्धारण।

शोध के प्रकार

सामान्य रूप से हमें शोध के मुख्य रूप से दो प्रकार दिखाई देते है, जिनमें (1) उद्देश्य की दृष्टि से दो प्रकार मिलते है, प्रथम प्रकार के अनुसार केवल वैज्ञानिक दृष्टि से अनुमानित परिकल्पना के आधार पर किसी तथ्य या सिद्धान्त का शोध करना है। इसे शुद्ध प्रकार का शोध कहते है। दृष्टान्त के रूप में शंकराचार्य द्वारा ब्रह्म एवं जीव को अभिन्न सिद्ध करने के अनुसंधान को हम शुद्ध शोध के अन्तर्गत रख सकते हैं। दूसरा प्रकार वह है जिसका उद्देश्य शुद्ध शोध के परिणाम को व्यावहारिक बनाने की दिशा में प्रयत्न करना होता है, जैसे रामानुज का दर्शन आदि, इसे व्यावहारिक अथवा कार्यशील शोध की संज्ञा दी जाती है। आइंस्टाइन के शुद्ध शोध को आधार बनाकर परमाणु बम बनाने का जो शोध कार्य किया गया हैं। उसे हम व्यावहारिक अथवा कार्यशील शोध के अन्तर्गत रख सकते है। (2) समय अथवा काल की दृष्टि से हमें शोध के तीन प्रकार मिलते है, जिनमें (अ) ऐतिहासिक शोध है, जिसमें मनुष्य की विभिन्न दिशाओं अर्थात् साहित्य, कला, दर्शन, संस्कृति, भाषा, विज्ञान आदि में होने वाले भूतकालीन प्रयत्नों, कार्यों का दार्शनिक एवं वैज्ञानिक पद्धति से अनुसंधान होता है, जिससे अतीत को वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में समझने का प्रयास किया जाता हैं। (ब) दूसरा व्याख्यात्मक अथवा वर्णनात्मक शोध है, जिसमें मानव जीवन की सभी वर्तमान समस्याओं पर, चाहे वह कला, धर्म, दर्शन, साहित्य, समाज विज्ञान अथवा शुद्ध विज्ञान से सम्बन्ध रखती हों, अनुसंधान किया जाता हैं। व्याख्यात्मक अथवा वर्णनात्मक शोध में तथ्यों का संकलन मात्र न होकर उनकी व्याख्या और मूल्यांकन होता है। समाज विज्ञानियों ने इस प्रकार के शोध का निश्चित पारिभाषिक शब्द निश्चित नहीं किया। इसे अनेक नामों से पुकारा जाता है जैसे कोई इसे 'वर्णानात्मक शोध' और कोई 'सर्वे शोध' कहता हैं। पहला नाम सार्थक है क्योंकि प्रायः सभी प्रकार के शोधों में वर्णन या व्याख्या ही होती हैं।

उपरोक्त शोध के प्रकारो के अलावा शोध का एक प्रकार 'समीक्षा' के रूप में भी हमारे सामने आता है। कहा जाता है कि शोध समीक्षा नहीं है, परन्तु उसमें समीक्षा का अंश रहता है, क्योंकि जब तथ्यों का विश्लेषण

किया जाता है, तो उस समय उनका मूल्यांकन भी किया जाता है। इस दृष्टि से शोध में समीक्षा का प्रवेश आवश्यक हो जाता है। इसके विपरीत समीक्षा में शोध का अंश आवश्यक नहीं है। जहां शोध में तटस्थ रहने की आवश्यकता होती है, वहां समीक्षा में तटस्थ रहने की अवश्यकता नहीं होती।

शोध की आवश्यक बातें

शोध के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि विश्वविद्यालय में शोध–अध्यादेश के नियमों के अन्तर्गत जितने भी विद्यार्थी पंजीकृत होते है, क्या वे सभी वास्तव में शोध के अधिकारी है ? शोधार्थी में जिन आवश्यक गुणों की आवश्यकता होती है, उनमें से कुछ आवश्यक बाते इस प्रकार है :–

1. शोधार्थी में ज्ञान के प्रति अटूट जिज्ञासा का होना अति आवश्यक है, क्योंकि कोई भी शोध ज्ञान की प्राप्ति के लिए ही किया जाता हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि जिस व्यक्ति में तथ्यों को जानने की उत्कट इच्छा हो वहीं व्यक्ति शुद्ध रूप से सच्चा शोधार्थी हो सकता है। ज्ञान का वास्तविक जिज्ञासु विपरीत परिस्थितियों में भी विजय को प्राप्त करता हुआ, अपने लक्ष्य पर पहुँच जाता है। परन्तु आजकल विश्वविद्यालयों में दिखाई दे रहा है कि बहुत से छात्र पंजीकृत होने के बाद महीनों–वर्षों तक मौन रहते है। शोध निर्देशक के पूछने पर छात्र कोई न कोई अड़चन आ जाने का बहाना बना देता है। कुछ समय बाद मिलने पर कोई दूसरी अड़चन आने का बहाना बना देता है। और इस तरह से महीनों–वर्षों तक ऐसे शोधार्थीयों का शोध कार्य चलता रहता है, परन्तु कागज पर कुछ नहीं लिखा जाता है। अतः जब तक शोधार्थी में शोध एवं ज्ञान के प्रति जिज्ञासा एवं जागरूकता नहीं होगी, तब तक शोध हो ही नहीं सकता है।
2. दूसरी आवश्यक बात है कि शोधार्थी द्वारा जो विषय लिया जाए, उसका उसे अच्छी तरह से आरम्भिक ज्ञान होना चाहिए, परन्तु वर्तमान समय मे स्थिति यह है कि छात्र निर्देशक के पास पहुँचता है और कहता है कि, मुझे कोई विषय दे दीजिए शोध करना है। जब शोधार्थी से पूछा जाता है कि तुम किस विषय पर शोध कार्य करना चाहते हो, तो वह चट कह देता है कि,'' श्रीमान, आप जो भी विषय देंगे, उस पर मैं पूरे मनोयोग से कार्य करूँगा।'' इस उत्तर का स्पष्ट अर्थ है कि ऐसा शोधार्थी किसी एक विषय के प्रति आस्थावान नहीं है। और जब तक शोधार्थी का कोई विषय अपना नहीं होता तब तक शोधार्थी की शोध कार्य में रूचि नहीं बढ़ सकती। इसके अलावा यह भी आवश्यक है कि जिस विषय को वह अपने शोध कार्य के लिए चुनता है, उस विषय पर कितना कार्य हो चुका है, इसका ज्ञान शोधार्थी को होना आवश्यक है। तभी वह जान सकेगा कि उस विषय में ऐसी कौन–सी दिशा है जो अछूति रह गई है और जिस पर वह अपने कार्य से उसकी पूर्ति कर सकता है और अपने विषय से संबन्धित उपलब्ध सामग्री का ज्ञान भी होना आवश्यक है, ऐसा न होने से समस्या का ही सामना करना पड़ेगा।
3. तीसरी आवश्यक बात है कि चयनित विषय पर शोध कार्य करने की शोधार्थी में पूर्ण क्षमता होनी चाहिए। कभी–कभी ऐसा होता है कि शोधार्थी ऐसे विषय पर शोध कार्य करने की माँग करता है, जो बहुत कठिन होता है और शोधार्थी को उस विषय का कुछ भी ज्ञान नहीं होता। जैसे कोई शोधार्थी यदि विश्व के सभी धर्मों पर एक साथ कार्य करने की इच्छा प्रकट करता है, तब निर्देशक ऐसे शोधार्थी से कहता है कि आप अपने देश के धर्म के बारे में तो कुछ न कुछ जानते हो, परन्तु विश्व के सभी धर्मो के बारे में कैसे जान पाओंगे, तो शोधार्थी उत्तर देता है कि पढ़कर जानकारी प्राप्त कर लेंगे, तो ऐसा उत्तर ठीक नहीं है, क्योंकि सभी देशों के धर्मो को जानने के लिए सभी भाषाओं का ज्ञान भी होना चाहिए, तभी विश्व धर्मों पर एक अच्छा शोध कार्य हो सकता है, परन्तु यहाँ यह बात स्पष्ट है कि सभी भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करना अति कठिन एवं श्रमसाध्य है, बिरला ही होगा जो सभी देशों की भाषा का ज्ञान रखता हो। इस प्रकार शोधार्थी को शोध का विषय चयन करते समय अपनी क्षमता और अपनी सीमाओं का ध्यान अवश्य रखना चाहिए। जिसका उसे ज्ञान न हो, उस पर शोध कार्य करना बहुत कठिन होगा।
4. चौथी आवश्यक बात है कि शोधार्थी को अपने कार्य में पूरे मनोयोग से लग्नशील रहने की धुन होनी चाहिए क्योंकि शोध से सम्बन्धित सामग्री एकत्र करने में अनेक कठिनाई आती है और कभी–कभी अपमानित भी होना पड़ता है। बार–बार शोधार्थी के एक ही स्थान पर जाने से, लोग उसे सन्देह की दृष्टि से देखते हैं। अनेक प्रकार के शारीरिक कष्ट भोगने की नौबत आ सकती है, जैस डॉ0 बी0आर0 अम्बेड़कर जैसे विद्वानों के सामने विदेशो में शोध कार्य करते समय अनेक कठिनाईयों का समाना करना पड़ा। शोधार्थी को शोध कार्य करते समय विपरीत परिस्थितियो का सामना करने के लिए पूर्ण रूप से तैयार रहना चाहिए और अपने कार्य में तनिक भी ढिलाई न आने देनी चाहिए। भारतीय दर्शन के तथागत बुद्ध, वर्द्धमान महावीर, महर्षि कणाद आदि तथा वर्तमान युग के प्रसिद्ध वैज्ञानिक स्टिफन हॉपकिन्स आदि ऐसे नाम है जिन्होंने विपरीत अवस्था में भी विश्व को नये–नये शोध करके अनेक सिद्धान्त दिये है।
5. पाँचवी आवश्यक बात है कि शोधार्थी को अपने शोध कार्य के संपादन में अनेक व्यक्तियों तथा संस्थाओं का सहयोग लेना पड़ता है, जिसके बदले में शोधार्थी के स्वभाव में कृतज्ञता का भाव होना चाहिए। ऐसा भाव न होने की दशा में शोधार्थी किसी से भी उदारतापूर्वक दुर्लभ सामग्री प्राप्त नहीं कर पायेंगा। इस प्रकार कहा जा सकता है कि शोध कार्य एक व्यक्ति के द्वारा साध्य नहीं होता, इसमें अनेक व्यक्तियों की सहायता अपेक्षित होती है। शोध कार्य एक प्रकार का टीम वर्क है। यदि शोधार्थी अपने

मददगारें के प्रति कृतज्ञता का भाव नहीं रखता है तो उसे अपने मददगार सहयोगियों से पर्याप्त एवं उचित सहायता नहीं मिलती। कई ऐसे शोधार्थी होते है जो जहाँ से और जिनके विचारों से सामग्री प्राप्त करते है, उनका नाम का उल्लेख तक नहीं करते। ऐसा करने से उनकी संस्कारहीनता का परिचय मिलता है और उनका आगामी शोध कार्य भी कष्टसाध्य हो जाता है।

6. छठवीं आवश्यक बात में कहा जा सकता है कि शोधार्थी को जब तक अपनी भाषा पर संतुलित नियन्त्रण नहीं होगा, तब तक उसका शोध प्रबन्ध कमजोर ही रहेंगा। भाषा की उचित जानकारी न होना, उसके शोध कार्य की गरिमा को घटा देती है और यही कारण है कि विषय के ज्ञान के रहते हुए भी भाषा–दोष के कारण कई बार शोध प्रबन्ध अस्वीकृत कर दिये जाते है। अतः अच्छे एवं उत्तम शोध प्रबन्ध के लिए भाषा की उचित जानकारी का होना अति आवश्यक है।
7. सातवीं महत्त्वपूर्ण बात है कि शोधार्थी को अपने विषय के प्रतिपादन में तटस्थ वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता होती है। तटस्थ भाव से ही सत्य का अनुसंधान किया जा सकता है। भावनाप्रधान एवं स्वमतग्रही छात्र एक अच्छा शोधार्थी नहीं हो सकता है। जैसे यदि कोई भक्ति प्रधान शोधार्थी केवल रामानुज के दर्शन को ही अन्तिम सत्य माने तो यह बात एकदम गलत होगी। अतः शोधार्थी को अपने शोध कार्य में एकदम तटस्थ भाव ही अपनाना चाहिए, तभी वह निष्पक्ष रूप से अपने शोध कार्य के द्वारा किसी नवीन विचार की स्थापना कर पायेंगा अन्यथा उसका कार्य एक पुनरावृत्ति मात्र होगा।

परिकल्पना और शोध कार्य की रूपरेखा

कुछ विचारकों की दृष्टि में शोध कार्य की परिकल्पना पूर्व में ही बना लेनी चाहिए। जैसे यदि किसी विषय पर बहुत सा शोध कार्य हो चुका है, तो उसके अध्ययन के आधार पर हमारे मन में कोई नई कल्पना का उदय हो सकता है और शोध कार्य की परिकल्पना बनाकर और शोध कार्य की रूपरेखा तैयार करके शोध कार्य प्रारम्भ किया जा सकता। इसके अलावा जहाँ किसी विषय पर शोध कार्य अधिक नहीं हुआ हुआ है, वहाँ बिना पूर्व परिकल्पना के भी उस पर कार्य आरम्भ किया जा सकता है। एक और बात यहाँ स्पष्ट करना आवश्यक है कि क्या किसी एक विषय पर हुए कार्य पर पुनः उसी विषय पर कार्य किया जाए अथवा नहीं। यह बात तो स्पष्ट ही है कि सामान्य रूप से यह कहा जाता है कि शोधित विषय पर कार्य करने से कोई विशेष तथ्य समाने नहीं आयेगा, केवल पुनरावृति मात्र होगी। परन्तु यदि यह सिद्ध हो जाये कि पूर्व शोध ठीक प्रकार से नहीं हुआ है, तो शोधित विषय पर पुनः शोध किया जा सकता है। जैसे स्वामी विवेकानन्द और एस0 राधाकृष्ण जैसे विद्वानों ने पुराने भारतीय दर्शन के शोधो पर आधुनिक युग की दृष्टि से शोध करके उनको नई एवं प्रासंगिक रूप में हमारे सामने रखा। ऐसे शोधों पर केवल आवश्यकता है, एक नवीन परिकल्पना बनाने की।

शोध के विषय की परिकल्पना बनाने के बाद, रूपरेखा बनाने की बारी आती है। किसी विषय की रूपरेखा बनाने के लिए विषय से सम्बद्ध साहित्य का अध्ययन करना पड़ता है। तब जाकर रूपरेख तैयार करना उत्तम होता है, परन्तु जिन विश्वविद्यालयों में शोध आवेदन पत्र के साथ विषय की रूपरेखा जमा करायी जाती है, वहाँ पर शोधार्थी अस्थायी रूपरेखा अथवा संक्षिप्त 'योजना–सूत्र' ही प्रस्तुत कर सकता है, जिसमें शोधार्थी विषय तथा अध्यायों के शीर्षक और उसमें वर्णित होने वाले प्रसंग को एक–दो पंक्तियों में लिख सकता है। कुछ विश्वविद्यालयों में 'शोध–प्रबन्ध' की प्रस्तुति के साथ रूपरेखा देने का प्रावधान है। ऐसा नियम न्यायसंगत प्रतीत होता है, क्योंकि इससे परिक्षक के सामने 'शोध–प्रबन्ध' की 'विषय–वस्तु' का स्पष्ट चित्र उपस्थित हो जाता है, परन्तु जिस विश्वविद्याय में पंजीकरण की शर्त ही रूपरेखा की प्रस्तुति हो, वहाँ शोधार्थी अस्थायी अथवा कामचलाऊ रूपरेखा तैयार कर सकता है, जो शोध कार्य की समाप्ति पर स्थायी और विस्तृत रूप ले सकती है। रूपरेखा के संक्षिप्त होने का यह अर्थ नहीं है कि उसमें अध्याय मात्र हों, परन्तु वास्तविकता यह है कि अध्यायों में वर्णनीय विषयों का स्थूल संकेत भी दिया जाना चाहिए।

शोध सामग्री संग्रह एवं इसके स्रोत

उचित प्रकार से शोध–कार्य की रूपरेखा तैयार हो जाने के बाद। शोधार्थी को विषय से सम्बन्धित सामग्री का संकलन करने का कार्य प्रारम्भ कर देना चाहिए। सामग्री संग्रह निम्न स्रोतों से प्राप्त की जा सकती है :–

1. प्रथम प्रकार में शोधार्थी को प्रकाशित ग्रन्थों का अवलोकन करना होता है। जिसके लिए शोधार्थी को सर्वप्रथम प्रकाशित ग्रन्थों की सूची तैयार कर लेनी चाहिए। इस कार्य के लिए कई पुस्तकालयों के अध्यक्ष इतने सहयोगी होते है कि वे शोधार्थी को उसके शोध के विषय पर प्रकाशित ग्रन्थों की सूची तैयार करने में पूरी सहायता देते है और सभी ग्रन्थों को उपलब्ध कराते है। विषय के निर्देशक भी इस कार्य में यथासंभव शोधार्थी की मदद करते है। वैसे प्रकाशित ग्रन्थों को पढ़ने का कार्य शोधार्थी को रूपरेखा तैयार करते समय ही प्रारम्भ कर देना चाहिए। विषय से सम्बन्धित प्रकाशित ग्रन्थों के लिए शोधार्थी अपनी संस्था के अलावा अन्य विश्वविद्यालयों की पुस्तकालय में भी जा सकता है। प्रायः सभी पुस्तकालयों के अध्यक्ष शोधार्थी की हर संभव मदद करते है।
2. दूसरे प्रकार के अन्तर्गत अप्रकाशित अथवा हस्तलिखित ग्रन्थ आते है, जिनकी सूची एवं उनका अवलोकन करना भी शोधार्थी के लिए आवश्यक है। ऐसे अप्रकाशित ग्रन्थों की सूची पुस्तकालयों में उपलब्ध रहती है। कुछ पुस्तकालयों जैसे बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी एवं नेशनल लाईब्रेरी, कलकत्ता एवं महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी ऐसे स्थान है, जहाँ अनेक प्रकार के हस्तलिखित प्राचीन ग्रन्थ इनके केन्द्रिय पुस्तकालयों में विद्यमान है। इनके अलावा धार्मिक संस्थानों में भी

हस्तलिखित पाण्डुलिपियां संग्रहीत रहती है। ऐसे पुस्तकालयों से शोधार्थी मदद ले सकता है।

इनके अलावा शोधार्थी को विषय से सम्बन्धित विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं एवं विश्व कोषों जैसे एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, एनसाइक्लोपीडिया अमेरिका, एनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड एथिक्स, एनसाइक्लोपीडिया ऑफ साइंस, भारतीय दर्शन कोष, पाश्चात्य दर्शन कोष आदि का भी विशेष प्रकार से अध्ययन करना चाहिए।

टीप (Notes) की पद्धति

नोट्स अथवा टीप लेने का तरीका भी शोधार्थियों को जानना चाहिए क्योंकि विभिन्न संदर्भ–ग्रंथ, पत्र–पत्रिकाओं को पढ़ते समय महत्त्वपूर्ण तथ्यों से टीप लेने की भी एक पद्धति है। पढ़ते समय जब आपकी दृष्टि संदर्भित स्थल पर जम जाये, तब आप उसे अपनी नोटबुक में उद्धरण–सहित नोट कर लिजिये और यह नोट लेखक के शब्दों में उद्धरण सहित ली जाती है। पेरा अथवा पदच्छेद पृष्ठ का सार–भाग का नोट लेते समय उद्धरण–चिह्न आवश्यक नहीं होते, क्योंकि शोधार्थी को ऐसा नोट अपनी भाषा में लेना होता है। कभी–कभी शोधार्थी को उद्धृत अंश पर अपनी टिप्पणी भी लिखनी चाहिए।

इस प्रकार विभिन्न स्रोतो से एकत्रित सामग्री प्राप्त करने के बाद, उसकी प्रमाणिकता की भी जांच कर लेनी चाहिए क्योंकि जिस प्रकार हस्तलिखित ग्रंथों में लेखन–प्रभाव दृष्टिगोचर होता है, उसी प्रकार मुद्रित ग्रंथों में भी लेखन तथा मुद्रण–प्रभाव की एक सी स्थिति नहीं पायी जाती है। कभी लेखक अपने पूर्ववर्ती लेखक की भूल को दुहराते जाते है और कभी अपने व्यक्तिगत विश्वासों के आधार पर किसी निष्कर्ष पर पहुँचते है। अतः शोधार्थी को किसी विषय पर किसी एक अधिकारी व्यक्ति के मत को अन्तिम प्रमाण नहीं मान लेना चाहिए। उस पर अन्य विशेषज्ञों के मतों को भी जानना चाहिए।

शोध प्रबन्ध लेखन की विधि

प्रायः प्रत्येक शोधार्थी प्रबन्ध लेखन की विधि को जानने के लिए उत्सुक रहता है कि क्या प्रबन्ध–लेखन की कोई वैज्ञानिक विधि होती है ? इसके उत्तर में कहा जा सकता है कि शोध प्रबन्ध का प्रत्येक भाग वैज्ञानिक विधि से ही लिखा जाता है। शोध प्रबन्ध लिखते समय शोधार्थी को यह बात ध्यान रखनी चाहिए कि शोध प्रबन्ध मुख्य रूप से तीन भागों में विभाजित होता है। इसके प्रथम भाग में भूमिका अथवा प्रस्तावना लिखी जाती है। दूसरे भाग में विषय–प्रतिपादन अर्थात् शोध प्रबन्ध में चयनित अध्यायों को लिखा जाता है। तीसरे और अन्तिम भाग में शोध के विषय का उपसंहार लिखा जाता है और अन्त में सन्दर्भ ग्रन्थ सूची की विस्तृत जानकारी लिखी जाती है।

शोध प्रबन्ध के प्रथम भाग में भूमिका लिखते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि भूमिका शोध के विषय से ही सम्बन्धित होनी चाहिए। प्रायः यह देखा जाता है कि शोधार्थी भूमिका को इतनी लम्बी लिख देता है, जो अध्याय की संख्या से अधिक प्रतीत होती है और ऐसी विस्तृत भूमिका लिखने से अध्यायों को लिखने का भाग क्षीण हो जाता हैं। भूमिका भाग का यह अनावश्यक विस्तार शोध प्रबन्ध के प्रति उपेक्षाभाव पैदा करता है। भूमिका लिखते समय शोधार्थी को सर्वप्रथम अपने विषय पर किये गये पूर्ववर्ती कार्यों का आलोचनात्मक विवेचन करना चाहिए और तत्पश्चात् अपने कार्य की उस दिशा का उल्लेख करना चाहिए जिस पर शोध कार्य नहीं हुआ है। भूमिका ऐसी होनी चाहिए जिससे पाठक को यह अवगत हो जाये कि शोधार्थी अपने शोध से, विषय के क्षेत्र में, ज्ञान की किस रूप में वृद्धि कर रहा है अर्थात् शोधार्थी को अपने शोधकार्य के उद्देश्य को स्पष्ट शब्दों में निर्दिष्ट करना चाहिए और साथ ही सामग्री संचयन में उसे जो दिक्कतें अनुभव हुई हों और इन परेशानीयों के कारण शोध प्रबन्ध में जो कमी रह गई हों, उन्हें भी अंकित कर देना चाहिए और इसके साथ ही प्रबन्ध जिस विधि में लिखा जा रहा है, उसका संकेत भी इसी भाग में आवश्यक है। भूमिका के अनन्तर प्रत्येक अध्याय को विषय क्रम से लेना चाहिए। जैसा कि रूपरेखा तैयार करते समय शोध प्रबन्ध विषयवार अध्यायों में विभक्त किया गया हो और यदि आवश्यक समझा जाये तो अध्यायों के क्रम में परिवर्तन किया जा सकता है। अध्यायों से सम्बद्ध विषय सामग्री की काटछाट भी की जा सकती है, क्योंकि कभी–कभी एकत्रित की गई सम्पूर्ण सामग्री की विषय स्पष्टीकरण में आवश्यकता प्रतीत नहीं होती तो ऐसी स्थिति में पृष्ठ बढ़ाने वाली अनावश्यक सामग्री को शोध प्रबन्ध से अलग किया जा सकता है। शोध की सामग्री को क्रमवार एकत्रित किया जाना चाहिए, इससे लेखन सरल हो जाता है। शोध प्रबन्ध के अन्तिम अध्याय, उपसंहार, में प्रबन्ध का सम्पूर्ण सार समाविष्ट किया जाता है, उसमें शोध की समस्या का पुनः वर्णन किया जा सकता है और उसको किस प्रकार से वर्णित किया गया है, इसका संक्षिप्त विवरण अवश्य दिया जाना चाहिए। अन्त में शोध के निष्कर्षों को प्रस्तुत किया जाना चाहिए। उपलब्ध सामग्री के आधार पर ही निष्कर्ष निकाले जाते है तथा अनुपलब्ध सामग्री के उपलब्ध हो जाने पर निष्कर्षों में संशोधन अथवा परिवर्तन किया जा सकता है, ऐसा संकेत दे देने से उसी विषय अथवा उससे सम्बन्धित विषय पर कार्य करने के इच्छुक भावी शोधार्थीयों का मार्ग सरल अथवा आसान हो जाता है। पूर्ण रूप से शोध प्रबन्ध के सभी अध्याय लिखे जाने के बाद, उसमें परिशिष्ट जोड़ा जाना चाहिए, जिसको अ, ब, स आदि से दर्शाया जा सकता है और परिशिष्ट 'अ' में अनिवार्य रूप से शोध प्रबन्ध में प्रयुक्त शास्त्रीय अथवा यान्त्रिक शब्दावली का उल्लेख किया जाना चाहिए।

शोध पत्र का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र नवीन पंजीकृत शोधार्थीयों को शोध की सामान्य एवं आवश्यक जानकारीयां प्रदान करने हेतु लिखा गया है। इस शोध पत्र को पढ़कर निश्चित रूप नवीन शोधार्थी शोध से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण सूचनाओं को प्राप्त करेंगे क्योंकि इस शोध पत्र में वे सभी सूचना एवं आवश्यक बाते बताने का प्रयास किया गया है, जिनकी एक नवीन शोधार्थी को नितांत आवश्यकता होती।

निष्कर्ष

इस प्रकार कह सकते है कि एक नवीन शोधार्थी को शोध प्रारम्भ करने से पहले उन सभी आवश्यक बातों

को जान लेना चाहिए जो शोध के लिए अति आवश्यक है क्योंकि प्रस्तुत शोध की जानकारियों के अभाव में शोधार्थी एक गुणात्मक शोध कार्य नहीं कर पाता है। परिणामस्वरूप शोधार्थी भाडें के शोध लेखकों की खोज में लग जाता है, इससे वह अपना शोध प्रबन्ध तो लिख या लिखवाकर जमा तो कर देता परन्तु अन्तिम शोध मौखिकी वह अपने शोध को पूरी तरह से स्पष्ट नही कर पाता और जीवन भर अपने शोध की अस्पष्टता को स्पष्ट करने के अनुसंधान में लगा रहता है जो कभी पूरा नही हो पाता। अतः आवश्यक है कि प्रत्येक शोधार्थी को शोध प्रारम्भ करने के पूर्व ही मेरे जैसे शोध पत्रों को अवश्य पढ़ लेना चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *डी0 आर0 जाटव, भारतीय दर्शन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, वर्ष, 2000*
2. *पैट्रिक, दर्शनशास्त्र का परिचय, हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़, 1990*
3. *पारसनाथ राय, सी0पी0 राय, अनुसंधान परिचय, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2015*
4. *डॉ0 विनयमोहन शर्मा, शोध प्रविधि, मयूर पेपरबैक्स, नोएडा, 2013*
5. *डॉ0 पिताम्बर दास (संपादक), दार्शनिक शोध एक अन्तर्क्रियात्मक अनुशीलन, भारती प्रकाशन, वाराणसी, वर्ष 2017.*
6. *डॉ0 पिताम्बर दास, दर्शनशास्त्र की शोध प्रविधियाँ, शेखर प्रकाशन, इलाहाबाद, उ0 प्र0, वर्ष 2017.*
7. *अर्जुन मिश्र, दर्शन की मूल धाराएँ, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, म0प्र0, 1997.*
8. *मृणालकांति गंगोपाध्याय, भारत में दर्शनशास्त्र, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1992.*
9. *डॉ0 डी0 आर0 जाटव, प्रमुख पाश्चात्य दर्शन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, राजस्थान, वर्ष 2010.*
10. *जगदीश सहाय श्रीवास्तव, समाज दर्शन की भूमिका, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, उ0 प्र0, वर्ष 2002*